महावीर-निर्वाण का ढाई हजारवाँ मंगल-वर्ष

चेते ज्ञान की चेतना... चला जाय भवपार

जब अशुभ कर्म का उदय आये, चारों ओर से प्रतिकूलताओं ने घेर लिया हो, मन व्याकुल हो रहा हो—ऐसे समय में क्या करना ?—ऐसा कई लोग पूछते हैं।

ज्ञानी उसे समझाते हैं कि हे साधर्मी भाई, हे बहादुर मुमुक्षु! ऐसे समय में भी तुम धैर्य धारण करके आराधना में अडिग रहना। पुण्योदय के समय जो करना है, वही पापोदय के समय भी करना है। धर्मी जीव पुण्योदय के समय भी उससे भिन्न आत्मतत्त्व की भावना व आराधना में वर्तते हैं, उसीप्रकार पापोदय के समय भी उससे भिन्न आत्मतत्त्व की भावना व आराधना में ही वर्तते हैं। ऐसा नहीं है कि—पुण्योदय के समय कुछ और करना हो और पापोदय के समय उससे कुछ अन्य करना हो। धर्मी जीव तो वह है जो—

पुण्य-पाप को सम गिनै, ले चेतना का स्वाद।
करै अनुभव ज्ञान का, चाखै सिद्ध-प्रसाद॥
अलग रहे पुण्य-पाप से, राग-द्वेष से पार।
चेते ज्ञान की चेतना, चला जाय भवपार॥

तंत्री-**पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार** * संपादक : **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**
वीर सं० 2500 ज्येष्ठ (चन्दा : चार रुपये) वर्ष 30 : अंक 2

साधर्मीजनों के लिये उपयोगी शिक्षा

1. सब साधर्मियों को समान मानकर सबसे हिलमिल कर रहना चाहिये।
2. मैं बड़ा, दूसरा छोटा—इसप्रकार किसी का तिरस्कार न करना चाहिये।
3. कोई अधिक पैसा खर्च करे, कोई कम, उस पर से गुण का माप नहीं करना चाहिये; किंतु सज्जनता से व गुण से धर्म की शोभा बढ़े–ऐसा वर्तन रखना चाहिये।
4. साधर्मी–मुमुक्षुओं में एक–दूसरे को देखकर प्रेम आना चाहिये।
5. भाई! वर्तमान में महा भाग्य से हमें ऐसा जैनधर्म मिला है, यह कोई साधारण बात नहीं है; अत: हम सबको मेलजोल से रहकर धर्म की शोभा बढ़ाना चाहिये और अपना कल्याण करना चाहिये।
6. एक–दूसरे की निंदा नहीं करना चाहिये। कोई मतभेद हो तो प्रेम से मिटा देना चाहिये। छोटी–छोटी बातों में विसंवाद पैदा करना मुमुक्षु को शोभा नहीं देता।
7. सबको मिलकर प्रतिदिन शास्त्रस्वाध्याय द्वारा ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये। ज्ञानाभ्यास के बिना धर्म के संस्कार नहीं टिकेंगे।
8. अरे, तीर्थंकरदेव के उत्तम मार्ग में आकर आत्मा समझने के लिये जो तैयार हुआ, उसे बाह्य में छोटा–बड़ापन या मान–अपमान क्या?
9. यह तो स्वयं अपने आत्मा का हितकर लेने की बात है।
10. अरे, संसार से तो मैं थक गया, अब उससे उदासीन होकर जैसे आत्मा का कल्याण हो, वही मुझे करना है।

[आत्मसाधना के लिये यह शिक्षायें सबको उपयोगी हैं।]

वीर सं. 2500
ज्येष्ठ 1974

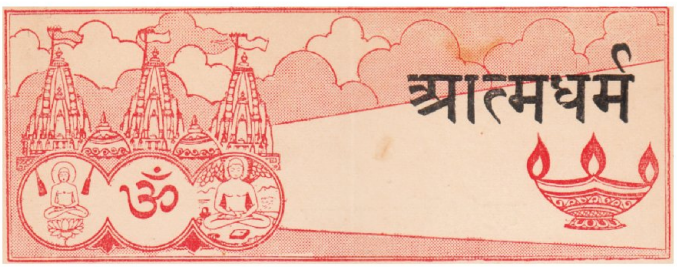

वर्ष 30 वाँ
अंक 2

जिनशासन वीतरागभाव का ही पोषक है

❀ जीव का स्वरूप चैतन्यमय है, वह वीतराग है।

❀ जो आत्मा वीतराग-सर्वज्ञ हुए, वे जिनशासन में देव हैं और उनकी वाणी, वह आगम है।

❀ उस जिनवाणीरूप आगम में वीतरागी तात्पर्य ही कहा है।

— अतः —

❀ जिसने राग से भिन्न वीतरागस्वरूप चैतन्यतत्त्व का अनुभव किया, उसी ने जिनवाणी को जाना है; जो अकेले राग का ही अनुभव करता है, उसने जिनवाणी को नहीं जाना।

❀ चैतन्यतत्त्व की अनुभूति राग से पार है, उसमें समस्त जिनशासन का सार समा जाता है। जिसमें राग के किसी अंश की पुष्टि का प्रयोजन हो—वह उपदेश जिनशासन का है ही नहीं।

❀ बस, वीतराग... वीतराग... वीतराग! देव भी वीतराग, उनकी वाणी भी वीतरागता की पोषक... और गुरु भी वीतरागता के साधक तथा बारंबार उसी का उपदेश देनेवाले हैं।

❀ ऐसे देव-शास्त्र-गुरु तीनों ही आत्मा के वीतरागस्वरूप के अनुभव का उपदेश देनेवाले हैं। ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मी जीव जिनशासन में शोभा पाते हैं और ऐसे जीवों से जिनशासन सदा जयवंत है।

वैराग्यरस की वर्षा

अष्टप्राभृत के भावप्राभृत में सम्यक्त्वादि शुद्ध भावसहित धर्मी को कैसा वैराग्य होता है, उसका अद्भुत वर्णन है। उसके प्रवचन में आजकल वैराग्यरस की धारा बरस रही है। जिसप्रकार आकाश में से बरसती हुई मेघधारा तप्त पृथ्वी को शांत करती है, उसीप्रकार चैतन्य के असंख्य प्रदेश में बरसती हुई वैराग्यरस की धारा मुमुक्षु के संसार का आताप दूर करके परम शांति प्रदान करती है। आप भी इस रसधारा को झेलकर आत्मा को शांतरस में निमग्न करो!

चैतन्य का शांतस्वभाव है; उसमें क्रोध का भाव करने का स्वभाव ही नहीं है। ऐसे शांतस्वभाव को जानकर उसकी ऐसी शांति के वेदन में रह कि हे जीव! सिर काटनेवाले के प्रति भी बैर की वृत्ति न उठे। बैर की वृत्ति में तो अशांति है। चैतन्य की परम शांति द्वारा क्रोध के दावानल को बुझा।

हे मुनि! हे मुमुक्षु! अपनी वैराग्यदशा का स्मरण तो कर! क्या उसमें क्रोध शोभा देता है? बाह्य में चाहे जैसा प्रतिकूल प्रसंग आये, कटु वचन सुनने को मिले, बाघ, सर्प आकर काटते हों, या सिर पर कोई कलंक लगता हो, तथापि हे मुमुक्षु! तूने तो अपने क्षमावंत आत्मा को जानकर उसकी शांति का स्वाद चखा है, इसलिये तू उस प्रतिकूलता के प्रसंग में भी क्षमा रखना, आत्मिक शांति का अमृत पीना... क्रोधाग्नि में मत जलना। अहा! ऐसे क्षमाभाव का क्षण भी अपूर्व क्षण है। बोलना सरल है परंतु अंतर में ऐसी वीतरागी-क्षमा की परिणति होना, और प्रतिकूलता के समय शांति बनी रहना—वह कोई धन्य क्षण है, उसमें अपूर्व पुरुषार्थ है! परंतु वह आत्मा का स्वभाव है, आत्मा उसे कर सकता है।

ऐसी उत्तम क्षमा और आत्मा की शांति कौन रख सकता है? सर्वज्ञ के जैनमार्गानुसार जिसने वस्तुस्वरूप जाना हो, वही आत्मप्रतीति की उत्तम भूमिका में ऐसी क्षमा रख सकता है।

शुभराग की क्षमा, वह दूसरी बात है और उस चैतन्य की शांति के वेदनरूप उत्तम क्षमा, वह रागरहित है, ऐसी क्षमा कोई विरले, आत्मअनुभवी ही रख सकते हैं। अहा! यह तो वीतरागमार्ग की क्षमा है! यह कोई साधारण नहीं है, वह तो अपूर्व है।

भाई! क्रोधाग्नि में तो अनंतकाल से जल रहा है, अब तो उससे निकलकर अंतर में चैतन्य का शांत अमृत पीने का यह अवसर है। देखो, श्रीकृष्ण के भाई गजसुकुमार, जिनका शरीर अत्यंत कोमल था, वे दीक्षा लेकर आत्मध्यान में बैठे-बैठे शांति का वेदन कर रहे हैं; वहाँ मस्तक अग्नि से जल रहा है, परंतु अंतर की चैतन्यपरिणति को क्रोधाग्नि में जलने नहीं देते, वह तो चैतन्य के परम शांतरस में लीन हैं। जलानेवाले पर द्वेष का कोई विकल्प नहीं है, उसीप्रकार देह जल रहा है, उसकी कोई वेदना नहीं है; शांतरस के वेदन में दुःख कैसा? और क्रोध कैसा? वह तो शांति के हिमालय में बैठे हैं, उसमें क्रोध-कषाय या अग्नि का प्रवेश ही नहीं है। अरे, शुभवृत्ति की आकुलता का भी जिसमें अभाव है, उसमें क्रोध की तो बात ही कैसी है? ऐसी शांति का वेदन धर्मी को होता है।

अरे जीव! ऐसी वीतरागता को पहिचानकर उसकी भावना तो कर! जीवन के परम वैराग्यप्रसंगों का स्मरण कर! भाई, तेरे चैतन्य की शांति के समक्ष बाह्य प्रतिकूलता की क्या गिनती? शांति तो तेरा स्वभाव है, क्रोध तेरा स्वभाव नहीं है। तेरी शांति की सामर्थ्य के निकट प्रतिकूल संयोग तुझे क्या करेंगे? क्षमा के हिमालय की गुफा में बैठा, वहाँ बाह्य प्रतिकूलता में क्रोध का अवसर ही कहाँ है!

देखो तो वीतरागता का कैसा सुंदर उपदेश है। भाई! ऐसी वीतरागी क्षमा में आनंद है। प्रतिकूलता में तू क्रोधादि करता है, परंतु हे जीव! तुझे उस संयोग का नहीं किंतु अपने क्रोध का दुःख है। क्रोध छोड़कर तू अपनी चैतन्यशांति में रह तो तुझे दुःख नहीं है; भले ही प्रतिकूल संयोग हों, परंतु क्षमावंत को दुःख नहीं है।

भाई! संसार तो असार है। संसार की ओर से जितने अशुभ या शुभपरिणाम हैं, वे सब असार हैं, चैतन्यतत्त्व, वह राग से पार है, उसका बोध करके, उसके वेदन की जो शांति है, वह सारभूत है; ज्ञान-वैराग्य की भावना उग्र करके हे जीव! तू ऐसे शांतरस का पान कर। कदाचित् कोई दुःखद घटना हो गई हो तो उस समय भी तीव्र वैराग्य द्वारा सारभूत चैतन्य की ऐसी

भावना भाना कि तेरे रत्नत्रय की वृद्धि हो। प्रतिकूलता आये, वहाँ व्याकुल मत होना परंतु आराधना में उत्साह प्रगट करके वैराग्य भावना में दृढ़ रहना, क्रोध की उत्पत्ति न होने देना, अपूर्व शांतरस में मग्न रहना... और दीक्षा आदि परम वैराग्य का स्मरण करके आत्मा को परम उल्लासपूर्वक रत्नत्रय की आराधना में लगाना। सारभूत चैतन्यभावों को जानकर असाररूप परभावों को छोड़ना। अरे, यह तो आराधना और समाधिमरण का अपूर्व अवसर है—वहाँ अपने हित को न भूलना।

अहा, मोक्ष के साधक मुनिवरों की क्या बात! जिनका मोह नष्ट हो गया है-उन्हें प्रतिकूलता का भय कैसा? हमें अपने चैतन्य के अनुभव में आनंद है, आनंद के वन में हम क्रीड़ा कर रहे हैं, वहाँ दुःख कैसा? और प्रतिकूलता कैसी? क्रोध कैसा? अरे, चैतन्य की ऐसी दशा को पहिचानो तो सही! ऐसी शांतदशा की पहिचान भी अपूर्व है। जगत के जीवों को ऐसी पहिचान भी दुर्लभ है। आत्मा की ऐसी शांत वीतरागदशा को पहिचाने तो मुमुक्षु के परिणाम कितने शांत हो जायें! मोक्ष का जिसे उल्लास है और संसार से जो उदास है, उसे शांति से बाहर निकलकर क्रोधाग्नि में जाना कैसे रुचेगा?

भव-तन-भोग असार हैं, और उनसे रहित आत्मा ही सार है—

- भव अर्थात् समस्त परभाव, वे भव का कारण हैं, परभाव असार हैं और चैतन्य का स्वभाव ही सार है।
- तन-शरीर, वह पुद्गल की रचना है, वह किस समय जीर्ण हो जायेगा या छूट जायेगा उसका कोई भरोसा नहीं है, उसके ओर की वृत्तियाँ असार हैं; और शरीर से पृथक् असंख्यप्रदेशी आत्मा आनंद का धाम है, वह सारभूत है।
- भोग-हर्ष-शोक की वृत्तियाँ असार हैं; इन्द्रिय-विषय या शुभराग उनका उपभोग, वह आकुलता और दुःख है, वे असार हैं; चैतन्य के आनंद का उपभोग, वह सुख और सार है।

इसप्रकार सार तथा असार तत्त्वों को जानकर हे मुमुक्षु! असार ऐसे भव-तन-भोग से तू विरक्त हो, और सारभूत ऐसे आनंदमय आत्मतत्त्व की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता की अत्यंत रूप से भावना कर... निरंतर परम वैराग्य से ऐसी जिनभावना में तत्पर रह।

अपनी चैतन्य-संपदा की अपार शांति का जिसने वेदन किया है, उसके स्वाद का अनुभव किया है, और देहादि के प्रति निर्ममता प्रगट की है, ऐसे सत्पुरुष अत्यंत कटु वचन आदि को समता से सहन करते हैं... काँटे के समान तीक्ष्ण-कर्कश वचनों को भी क्रोध किये बिना वीतरागभावना से सहन कर लेते हैं। लोक में भी महान पुरुष निंदा आदि सुनकर क्रोध नहीं करते, परंतु धैर्य रखते हैं कि होगा... यह तो ऐसे ही चलता है... तो फिर जिन्होंने चैतन्य की शांति को जाना है, ऐसे धर्मात्मा-सत्पुरुषों को जगत के कटु वचन सुनकर भी क्रोध करना उचित नहीं है; धर्मात्मा को तो वैराग्य उमड़ आता है कि—अरे, यह जगत की स्थिति! अज्ञानी निंदा करें, उससे मुझे क्या? मेरी शांति तो मेरे आत्मा में है। इस संसार से तो विरक्त होना ही योग्य है। भाई! दुनिया के लालच में पड़कर या दुनिया की निंदा से डरकर तू अपने वैराग्य को न भूलना... अपनी शांति के मार्ग में शिथिल न होना, परंतु वैराग्य-भावना को दृढ़ करना। मन से-वचन से या काय से शत्रु पर क्रोध न करना; क्षमा धारण करना। बाह्य अग्नि तेरे गुणों को नहीं जला सकती, किंतु क्रोधाग्नि तेरे क्षमागुण को जला देती है। इसलिये तू क्रोध से दूर रहना और अपने क्षमादि गुणों की रक्षा करना। क्षमारूपी शीतल जल की वर्षा द्वारा तू क्रोध के दावानल को बुझा देना।

प्रथम तो सत्य ज्ञान करना चाहिये कि क्रोध है, वह दु:ख है, और आत्मा का चेतनस्वभाव क्रोधादि रहित है; मेरा चेतनस्वभाव अनंत शांति की संपदा से भरपूर है;—इसप्रकार निजसंपदा की प्रतीति द्वारा ही सच्ची क्षमा प्रगट होती है। क्षमा के लिये, जगत की ओर देखना छोड़कर (—इसने मेरा ऐसा अहित किया—ऐसे क्रोध को छोड़कर) तू अपने निजगुण की महान संपदा को सँभाल। अरे, मैं ऐसी महान संपदावान-वीतरागता और सर्वज्ञता से पूर्ण महान आत्मा, उसमें मुझे ऐसी क्रोधादि तुच्छ वृत्तियाँ शोभा नहीं देती। जैसे विशालकाय हाथी को देखकर कुत्ते भौंकते हैं, लेकिन हाथी कहीं कुत्तों से लड़ने नहीं जाता, वह तो अपनी मस्त चाल से चला जाता है। उसीप्रकार धर्मी जीव जगत के प्रति परम वैराग्यपूर्वक चैतन्य की मस्ती में मस्त रहकर अपने वीतरागमार्ग में आनंद से चला जाता हो, वहाँ जगत में कौन निंदा-प्रशंसा करता है, उसे देखने को नहीं रुकता; आत्मसाधना की धुन में जगत की ओर देखने या राग-द्वेष करने में कौन रुके? भाई! तू मुमुक्षु है! तुझे ऐसा करना योग्य नहीं है।

भाई! प्रतिकूलता के समय तू अपने वैराग्य को पुष्ट करना, शिथिल न होना। जीवन में चैतन्य की परम महिमा की भावना जागृत हुई हो, कोई परम वैराग्य की घटना हुई हो, जिससे मरण हो जाये, ऐसी कोई दुर्घटना या रोग आदि हुआ हो और उसमें से बच गया हो—ऐसे प्रसंगों का स्मरण करके वैराग्य की धुन प्रगट करना और अपनी शुद्धता की वृद्धि करना।

और हे मुमुक्षु! अपने वैराग्य की वृद्धि के लिये, जीवन में किन्हीं मुनि आदि के महान उपदेश के धन्य अवसर पर जागृत हुई उत्तम आत्मभावना का स्मरण करना; अथवा अपने अंतर में चैतन्यस्वरूप के आनंद की कोई अपूर्व ऊर्मियाँ किसी धन्य क्षण में जागृत हुई हों, उनका स्मरण करके अपने आत्मा को उल्लसित करना। तीर्थयात्रा में कोई विशेष भावना जागृत हुई हो, किसी धर्मात्मा के साथ आत्म-अनुभूति की गंभीर चर्चा हुई हो, किसी विशिष्ट क्षण में अंतरात्मा की धुन में कोई परम चैतन्यभाव विकसित हुए हों, श्रद्धा-ज्ञान में भगवान आत्मा प्रगट हुआ हो—ऐसे अनुभूति के धन्य अवसर का बारंबार स्मरण करके अपने आत्मा का पुरुषार्थ जागृत करना... और रत्नत्रय की शुद्धता बढ़ाना।

वाह! देखो तो यह वीतरागमार्ग का यथार्थ उपदेश! यह तो शूरवीरों का मार्ग है। जगत को एक ओर रखकर अंतर में आनंद से छलकते हुए चैतन्यसरोवर में उतरने की यह बात है। यह परम शांति का मार्ग है। जो इसमें आये, वह परम शांति का अनुभव करे—ऐसा यह मार्ग है। हे जीवो! ऐसे सुंदर मार्ग में आओ... और आत्मा की शांति का स्वाद लो।

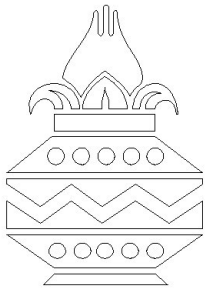

धर्मी को आनंद ही आनंद है!

भाई! धर्मी को तो सदा आनंद ही होता है! परंतु वह आनंद किसका है? कहीं राग या पुण्य का वह आनंद नहीं है; वह तो चैतन्य के अनुभव का आनंद है। उस अनुभव में द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद नहीं है। एक सत्त्व में द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह व्यवहार है; और अभेदरूप एक शुद्धतत्त्व की अनुभूति, वह परमार्थ है। आत्मा पर से भिन्न है, परंतु अपने गुण-पर्याय से भिन्न नहीं है।

[समयसार-कलश 48-49]

सम्यग्दर्शन होने पर जीव स्वयमेव शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप हुआ; उस आनंदमय अनुभव में अपने स्वरूप के अतिरिक्त किसी की अपेक्षा नहीं है; राग या गुरु-उपदेश का अवलंबन स्वरूप के अनुभव में नहीं है। राग के समय उपदेशादि का अवलंबन होता है परंतु शुद्धस्वरूप की अनुभूति में वह नहीं है। ऐसी अनुभूति से धर्मी का आत्मा सुशोभित है। ऐसे अनुभवशील धर्मात्मा शुभ-अशुभ के प्रसंगों पर, ज्ञान को भिन्न रखकर शांति का वेदन करते हैं। राग के वेदन को दुःखरूप जानते हैं और चैतन्य के शांतरस का वेदन करते हैं।

कोई कहे—धर्मी को तो आनंद ही आनंद है! राग भी करे और धर्म भी हो!

—भाई, धर्मी की अंतरंगदशा गहरी है; धर्मी को तो आनंद ही होता है! परंतु वह आनंद कहीं राग या पुण्य का नहीं, वह सुख तो चैतन्य के अनुभव के आनंद का है। परंतु ऐसा अनुभव कोई विरले धर्मात्मा ही करते हैं। अज्ञानी राग या विषयों में सुख मानते हैं, वह सच्चा सुख नहीं, वह तो दुःख है।

अहा, इस सर्वज्ञस्वभावी, रागरहित चैतन्यतत्त्व में क्लेश कैसा? और दुःख कैसा? चैतन्यतत्त्व स्वयं सुखरूप है, इसलिये उसकी अनुभूति होने पर आत्मा स्वयं सुखरूप होता है, उसे दुःख नहीं रहता। सुखस्वभावी वस्तु में तन्मयता से तो सुख ही होगा। स्वभाव का जितना

अवलंबन है, उतनी तो क्लेश से निवृत्ति ही है; पर्याय में जितना सुख है, उतना पर का अवलंबन है। परंतु उसी समय धर्मी को स्वभाव के अवलंबनरूप सुख की धारा वर्तती है। दोनों भावों को धर्मी ज्यों का त्यों जानता है।

एक सत्त्व, उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद करना, वह व्यवहार; अभेद सत्त्व की अनुभूति, वह परमार्थ

देखो, कैसे वस्तुस्वरूप के विचार से भेदज्ञान और सम्यग्दर्शन होता है, उसकी बात स्पष्टरूप से समझाते हैं, वस्तु को अपने समस्त गुण-पर्याय के साथ व्याप्य-व्यापकतारूप एकसत्त्वपना होता है; द्रव्य-गुण-पर्याय इन तीनों को एकसत्त्वपना है; एकसत्त्व में भेद करके परस्पर व्याप्य-व्यापकपना कहने में आता है—इतना व्यवहार लिया, परंतु रागादि के साथ शुद्ध वस्तु को व्याप्य-व्यापकता भूतार्थदृष्टि में नहीं है। शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों चेतनभावरूप ज्ञातादृष्टा हैं, उनमें आत्मा को व्याप्य-व्यापकता है। एक अभेद तत्त्व में इतना भेद करना, वह भी व्यवहार है; वहाँ रागादि के कर्तृत्वरूप अशुद्धता की बात कही कहाँ रही? राग के कर्तृत्वरहित हुआ ऐसा शुद्धचेतनभाव में स्थितिरूप आत्मा शोभित है। शुद्धचेतनभावरूप एक अभेद सत्त्व का अनुभव, वह परमार्थ है।—ऐसी अनुभूति द्वारा ज्ञानी हुए जीव को मिथ्यात्वादि परभावों का कर्तृत्व छूट जाता है! जहाँ सम्यक्त्वसूर्य उदित हुआ, वहाँ मिथ्यात्व-अंधकार मिट जाता है।

चैतन्यभावरूप शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायमय एक अभेद सत्त्व आत्मा वह निश्चय है, वह भूतार्थ है; उस अभेद में द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद उपजाना, वह व्यवहार है, उसके आश्रय द्वारा एक अभेद शुद्धवस्तु अनुभव में नहीं आती परंतु विकल्प होता है। इसलिये वह अभूतार्थ है। सुवर्ण में जो मैल है, वह तो अलग है, लेकिन एक सुवर्ण में पीलापन, वजन आदि भेद कहना, वह व्यवहार है, और पीलापन आदि का सत्त्व सुवर्ण से भिन्न नहीं है, परंतु एकसत्त्व है, इसलिये उसका भेद न करके सोना, वह सोना ही है—यह भूतार्थ है। उसीप्रकार चैतन्यवस्तु एक आत्मा है, उस चैतन्यवस्तु में कर्म या राग की तो बात ही नहीं है, उससे तो चैतन्यतत्त्व भिन्न है; परंतु एक चैतन्यवस्तु में द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह व्यवहार है; और द्रव्य-

गुण-पर्याय का सत्त्व एक शुद्ध चेतनवस्तु से भिन्न नहीं परंतु एकसत्त्व है; इसलिये उसका भेद न करके 'ज्ञायक वह ज्ञायक'—ऐसा अभेदमात्र अनुभव, वह भूतार्थ है, वह निश्चयदृष्टि है, वह सम्यग्दृष्टि का विषय है; इसप्रकार वस्तुस्वरूप विचारने पर भेदज्ञान होता है, और भेद-विकल्प छूटकर चेतनवस्तु का साक्षात् अनुभव ज्यों का त्यों होता है। जो इससे विपरीत वस्तुस्वरूप का विचार करे, उसे कभी भेदज्ञान या आत्म-अनुभव नहीं होता।

देखो, अच्छा स्पष्टीकरण किया है—जिसका विचार करने पर भेदज्ञान होता है : 'समस्त गुणरूप और पर्यायरूप भेद-विकल्प तथा एक द्रव्यरूप वस्तु, वह एक सत्त्वरूप वस्तु में होते हैं। भावार्थ ऐसा है कि जिसप्रकार सोना पीला, भारी, चिकना—ऐसा कहा जाता है, परंतु वह एक सत्त्व है। उसीप्रकार जीवद्रव्य ज्ञाता, दृष्टा ऐसे भेद कहने के लिये हैं, परंतु एक सत्त्व है। इसप्रकार एक सत्त्व में व्याप्य-व्यापकता होती है; अर्थात् भेद किये जायें तो व्याप्य-व्यापकता कही जाती है, परंतु अभेद वस्तु के अनुभव में 'यह व्याप्य और यह व्यापक' ऐसे भेद नहीं रहते; चैतन्यवस्तुमात्र एक सत्त्व अनुभव में आता है। अपने में यह द्रव्य कर्ता और यह शुद्ध पर्याय उसका कर्म—ऐसा भेद करना, वह व्यवहार है; परंतु पर के साथ तो व्यवहार से भी कर्ताकर्मपना नहीं है। बस, शुद्धवस्तु में अभेद में भेद करना, इतना व्यवहार यहाँ लिया है, इसके अतिरिक्त अशुद्धता या कर्म के साथ तो शुद्धतत्त्व का कोई भी संबंध नहीं है, उससे तो भिन्नता ही है। शुद्ध चेतनभाव को रागादि के साथ कर्ताकर्मपना या व्याप्य-व्यापकपना नहीं है, उसकी जाति ही भिन्न है, इसलिये उसका सत्त्व ही भिन्न माना है। शुद्ध चैतन्यसत्त्व के अनुभव में रागादि का अभाव है, ऐसे अपने शुद्धसत्त्व का अनुभव करने पर भव का अन्त आता है, और अतीन्द्रिय चैतन्यशांति का अनुभव होता है।

एक चैतन्यवस्तु में द्रव्य-पर्याय का भेद करके, यह कर्ता, यह कर्म—ऐसे भेद किये जायें तो व्यवहार से होते हैं, और भेद न किये जायें तो नहीं होते, अर्थातृ अभेद वस्तुमात्र अनुभव में आती है, वह निश्चय है। एक वस्तु में उसके द्रव्य-पर्याय के भेद करके उसमें व्याप्य-व्यापकपना कहा जाता है, परंतु दूसरी वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ तो किसी भी प्रकार व्याप्य-व्यापकता नहीं कही जा सकती, क्योंकि दोनों सत्त्व ही भिन्न हैं। इसीप्रकार चैतन्यभाव को राग के साथ व्याप्य-व्यापकभाव नहीं है, इसलिये कर्ता-कर्मपना भी नहीं है, दोनों की

जाति भिन्न है, इसलिये सत्त्व भिन्न हैं। इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा धर्मी जीव विकार और परद्रव्यों से शुद्ध चैतन्यवस्तु का भिन्न अनुभव करते हैं और अभेद के अनुभवकाल में द्रव्य-पर्याय के भेद का विचार भी नहीं रहता। ऐसा अनुभव करनेवाला धर्मात्मा रागादि के कर्तृत्व से रहित होता हुआ मोक्षमार्ग में शोभायमान होता है।

— इसलिये ऐसा अनुभव कर्तव्य है।

— पद —

[हजारीलाल जैन 'काका', पोस्ट-सकरार (झाँसी), उ.प्र.]

नाथ मेरो कब वह शुभ दिन आवै।

दृग द्रष्टा बन निजपर जानूं मिथ्यातम नश जावै,
जब निज परिणति दुविधि कर्म तें न्यारी ही दर्शावै,
नाथ मेरो कब वह शुभदिन आवै।

कब बिन बसन लगै पद्मासन मृग तन खाज खुजावै,
निजविवेक बिन भव-भव भटकत यह चक्कर मिट जावै,
नाथ मेरो कब वह शुभदिन आवै।

कब समकित जल द्वारा 'काका' राग आग बुझ जावै,
निजानंद रस पान करै कब यह जिय शिव सुख पावै,
नाथ मेरो कब वह शुभदिन आवै।

श्रावक के आचार

सद्गृहस्थ-श्रावक के आचार कैसे सुंदर और धर्म से शोभायमान होते हैं, उसका थोड़ा-थोड़ा वर्णन इस विभाग में देंगे। यहाँ सकलकीर्तिरचित श्रावकाचार में से कुछ सार दिया है। सम्यक्त्व के पूर्व भी जिज्ञासु जीव को आचरण में अत्यंत सौम्यता तथा अहिंसा, सत्य आदि का प्रेम होता है। सम्यक्त्व के पश्चात् तो वीतरागता के अंश की उसे वृद्धि होती जाती है और वह मुनिदशा की ओर डग बढ़ाता है, तब उसके आचरण में अधिक विशुद्धता हो जाती है। चारों ओर फैले हुए भ्रष्टाचार के बीच वीतरागमार्ग का ऐसा उत्तम आचरण, वह डूबते हुए मनुष्य को नौका के समान है। [—संपादक]

मैं श्री वृषभजिनेश को नमन करता हूँ... वे धर्म के दातार हैं,
धर्म के नायक हैं, जगत के नेता हैं और धर्मतीर्थ के प्रवर्तक हैं।
उन्हें किसलिये नमन करता हूँ? धर्म के हेतु नमस्कार करता हूँ।

[इसप्रकार वृषभदेव को नमस्कार करके अगले श्लोक में श्री वर्द्धमान जिनेश तथा शेष तीर्थंकरों को, सिद्धों को, आचार्य-उपाध्याय-साधुओं को, श्रुतज्ञानरूप सरस्वती देवी को तथा गणधरों को नमस्कार किया है।]

जो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान सहित हो, श्रावक के आचारों का पालन करने में तत्पर हो, बुद्धिमान हो और संवेग तथा वैराग्य से सुशोभित हो, उसे श्रावक कहते हैं। ऐसा कोई श्रावक धर्मश्रवण की जिज्ञासा से, रत्नत्रय द्वारा सुशोभित, परिग्रहरहित निर्ग्रंथ मुनिराज को नमस्कार करके पूछता है कि हे भगवान! दुःख से भरे हुए इस असार संसार में सारभूत क्या है? वह कृपा करके कहिये।

श्रीगुरु कहते हैं कि–हे वत्स! चार गतिरूप संसार के खारे समुद्र में जीव को गुणों से सुशोभित मनुष्यपना प्राप्त करना, वह अत्यंत दुर्लभ और साररूप है।

हे भगवन्! यह मनुष्यपना प्राप्त करके भी सच्चा सारभूत क्या है—कि जिससे यह मनुष्यजन्म सफल हो?—वह मुझे कहें।

हे भव्य! इस मनुष्य-जन्म में भी सम्यक्त्वादि श्रेष्ठ रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति होना ही परम सार है; वह धर्म ही संसार-समुद्र से पार करनेवाला है; सुख का भंडार है और स्वर्ग-मोक्ष देनेवाला है।

वह धर्म दो प्रकार का है—मुनिधर्म और श्रावकधर्म; उसमें से श्रावकधर्म का यहाँ वर्णन है।

ज्ञानियों को सोने की भाँति देव-गुरु-सिद्धांत की परीक्षा करके धर्म का ग्रहण करना चाहिये।

श्रावकधर्म सरल है; घर, व्यापार आदि का कार्य करते हुए भी श्रावक उसका सरलता से पालन कर सकता है। मुनिधर्म महान है। दीन मनुष्य उसका पालन नहीं कर सकते, गृहस्थदशा में उसका पालन नहीं होता।

जैनधर्म अल्प हो, तथापि वह सारभूत है। इस जैनधर्म के प्रभाव से जीव को पाप तो दूर ही रहते हैं, किंतु निकट नहीं आते, स्वर्ग-मोक्ष की लक्ष्मी अपने-आप उसके पास दौड़ आती है और सदा उसे देखती रहती है।

धर्म-सिंहासन पर विराजमान जीव के पास तीन लोक का सुख आ जाता है। इस श्रेष्ठ धर्म का पालन करनेवाले के हाथ में चिंतामणि है, उसके घर में कल्पवृक्ष और कामधेनु है।

जो जीव साक्षात् धर्म का पालन करता है, उसे सुख के लिये अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं होती।

इसलिये आत्महितैषी जीवों को अज्ञान छोड़कर सदा धर्म का ही पालन करना चाहिये, जिससे सुख की अनुभूति हो।

जिनदेव की पूजा, साधुओं को दान और शास्त्रस्वाध्याय, यह श्रावक के मुख्य आचरण हैं।

[प्रश्नोत्तर-श्रावकाचार : दूसरे अध्याय में से]

राग-द्वेषादि समस्त दोषों को जीतनेवाले, परंतु स्वयं अजित ऐसे भगवान अजितनाथ को नमस्कार करके श्रावक के व्रत करता हूँ, उसे हे भव्य! तू सुन।

जिसप्रकार वृक्ष का आधार उसकी जड़ है, उसीप्रकार समस्त व्रतों के आधाररूप मूल सम्यग्दर्शन है। जिसप्रकार जड़ के बिना कोई वृक्ष नहीं रहता, उसीप्रकार सम्यग्दर्शन के बिना व्रत नहीं हो सकता।

इसलिये विवेकी गृहस्थों को सर्वप्रथम समस्त व्रतों का सारभूत सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये; क्योंकि सम्यग्दर्शन के साथ-साथ होनेवाले व्रत ही समस्त पापों को दूर कर सकते हैं, सम्यग्दर्शनरहित व्रतों से पाप दूर नहीं होते।

जीवादि सात तत्त्वों का श्रद्धान करना, वह सम्यग्दर्शन है; सम्यग्दर्शन धारण करने के लिये जीवों को तत्त्व का ज्ञान जरून करना चाहिये।

हे भगवान! तत्त्व क्या-क्या है? उनमें कैसे गुण हैं? उनका क्या लक्षण है? उनका स्वरूप मुझे कहो।

हे बुद्धिमान! सुन! सर्वज्ञ ने आगम में सात तत्त्व कहे हैं : जीव-अजीव, आस्रव-बंध, संवर-निर्जरा-मोक्ष (पुण्य और पाप आस्रव में आ जाते हैं)। जो उपयोगस्वरूप है और उपयोगरूप अपने चैतन्यप्राण से तीनोंकाल जीवित है—स्थित है—वह जीव है। वह अमूर्त है; अशुद्ध दशा में वह कर्म का कर्ता-भोक्ता है, शुद्धदशा में वह कर्म का कर्ता-भोक्ता नहीं है, अपने आनंदादि स्वधर्म का ही कर्ता-भोक्ता है। उसमें संकोच-विस्तार का सामर्थ्य होने पर भी सदा लोक जितना असंख्यप्रदेशी ही रहता है। ऐसे जीव जगत में अनंत हैं। संसारदशा और सिद्धदशा ऐसी दो अवस्थाओंरूप वह परिणमित होता है। संसारदशा का कारण पुण्य-पाप-आस्रव और बंध है। मोक्षदशा का कारण संवर और निर्जरा है।

— इसप्रकार सम्यग्दर्शन की शुद्धि के लिये तत्त्व का स्वरूप जानना चाहिये।

अजीव तत्त्व के पाँच भेद हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

पुद्गल-परमाणु अनंतानंत हैं; मूर्तिक हूँ अर्थात् स्पर्श, रस आदि सहित हैं। आठ कर्म शरीर आदि पुद्गल की रचना है।

धर्म-अधर्म वह दोनों एक-एक द्रव्य हैं, अमूर्त हैं, लोकव्यापक असंख्यप्रदेशी हैं।

आकाश अमूर्त है, क्षेत्रस्वभावी सर्वव्यापक है, अनंतानंत प्रदेशी है।

काल अमूर्त है, एक ही प्रदेशी है। लोक में सर्वत्र एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु द्रव्य स्थित है।

जीव-पुद्गल के अतिरिक्त चारों द्रव्य सदा स्थिर रहनेवाले हैं। जीव और पुद्गल हलन-चलन करनेवाले हैं।

छहों द्रव्य स्वयं अपने में अनंत स्वधर्मसहित नित्य स्थित रहकर प्रतिक्षण परिणमनशील हैं, अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभावी हैं, किसी के बिना बनाये स्वतंत्र सत् स्वभावी हैं।

चतुर पुरुषों को जैनसिद्धांत के अनुसार ऐसे तत्त्वों का सच्चा ज्ञान होता है।

कर्म के आस्रव में सबसे मुख्य कारण मिथ्यात्व है; जिससे जीव संसार में भ्रमण करता है, और दु:ख का अनुभव करता है। आये हुए कर्मों की स्थिति, वह बंध है; और कर्मों का जाना, वह निर्जरा है।

सर्व कर्म के संबंध रहित, जीव की पूर्ण शुद्धदशा, वह मोक्ष है; वह महा आनंदरूप है। मोक्ष को प्राप्त हुए जीव चारगति के भवों में कभी अवतरित नहीं होते; अनंत काल तक सदा मोक्षसुख का ही अनुभव करते हैं। उनका सुख स्वभाविक है, उत्कृष्ट है, अनुपम है, अनंत है, अछिन्नरूप से निरंतर रहनेवाला है।—अहा! वह मोक्षसुख संतों द्वारा महा प्रशंसनीय है, इष्ट है।

— ऐसे तत्त्वों को जानकर हे जीव! तुम सम्यग्दर्शन प्रगट करो।

यदि मिथ्यात्वादि पाप न रुकें, या नष्ट न हों, तो व्रत-तप-चारित्र का पालन या ज्ञान की वृद्धि—वह सब व्यर्थ है, क्लेशरूप है।

संसार में जीव का वही सच्चा मित्र है, तथा वही सच्चा बन्धु है जो उसे धर्मसेवन में सहायक हो। धर्मसेवन में विघ्न करनेवाला तो शत्रु है।

अहा, मुनिराज भव्य जीवों को धर्मोपदेशरूपी हाथ का सहारा देकर पाप के विशाल समुद्र से पार करते हैं और मोक्षमार्ग पर लगाते हैं; वे ही इस जीव के सच्चे बन्धु हैं।

अधिक क्या कहें! थोड़े में इतना समझ लो कि जगत में जो कुछ बुरा है–दुःख है–दरिद्रता है–निंदा–अपमान–रोग–आधि–व्याधि है, वे सब पाप से ही उत्पन्न होते हैं।

— इसलिये हे बुद्धिमान! यदि तू दुःख से बचना चाहता हो, और स्वर्ग–मोक्ष के सुख की इच्छा हो, तो बुद्धिपूर्वक हिंसादि पापों को छोड़... और उत्तम क्षमादि धर्मों का सेवन कर।

जीवों को देव–गुरु–शास्त्र की सेवा का भाव, संसार से विरक्ति और मोक्षमार्ग साधने का उत्साह—रत्नत्रय की भावना, किसी महान सद्भाग्य से ही प्राप्त होते हैं। अहा, हृदय सदा वैराग्य से भरपूर रहना, ज्ञान के अभ्यास में सदा तत्पर रहना, सर्व जीवों के प्रति समभाव रहना—यह तीन बातें महाभाग्यवान जीव को ही प्राप्त होती हैं।

सम्यग्दर्शनरहित दान या व्रत से उत्तम पुण्य नहीं होता, या मोक्षसाधन भी नहीं होता—ऐसा भगवान जिनदेव ने कहा है; इसलिये हे भव्य जीव! तू मोक्ष के लिये सत्य ज्ञान का अभ्यास करके प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट कर। मात्र पुण्य के फल में न रुक।

जो मुनिराज मोक्ष की प्राप्ति में लगे रहते हैं और उत्तम ज्ञान–चारित्र से सदा सुशोभित रहते हैं वे; संसार में वृद्धि करनेवाले पुण्य की कभी इच्छा भी नहीं करते।

सर्वज्ञकथित जीवादि सात तत्त्वों की श्रद्धा करने से जीव को शंकादि सर्वदोष से रहित और सुख से भरपूर ऐसा सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। हे भव्य जीव! यह सम्यग्दर्शन सर्व तत्त्वों में सारभूत है, अनेक देव उसकी सेवा करते हैं, वह अतिशय विशाल–गंभीर है; अनंत ज्ञानादि परम गुणों से पवित्र, सर्वदोष रहित और समस्त लोकालोक के प्रकाशक ऐसे तीर्थंकर परमदेव ने भी सम्यग्दर्शन की प्रशंसा की है। अतः मोक्ष के हेतु तू भी निःशंकता सहित सम्यग्दर्शन का सेवन कर... उसे अकंपरूप से धारण कर। [क्रमशः]

सम्यक्त्व के परम गुण जानकर उसकी आराधना करो। मिथ्यात्व के महा दोष जानकर उसका सेवन छोड़ो।

[वीरनिर्वाण सं. 2500 ज्येष्ठ, कृष्णा छठ के प्रवचन में से]
मोक्षप्राभृत गाथा 96-97 तथा
समयसार कलश टीका : कलश 32

आज सोनगढ़ के समवसरण में सीमंधर भगवान की स्थापना का मंगल दिन (33वीं वर्षगाँठ) है। समवसरण में भगवान ने क्या उपदेश दिया-वह बात कुन्दकुन्द आचार्यदेव बतलाते हैं।

आत्मा की प्रतीतिरूप सम्यक्त्व से होनेवाला महान अतीन्द्रियसुख, और मिथ्यात्व के सेवन से होनेवाला भव-भ्रमण का महान दुःख, यह दोनों बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं—सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का ऐसा फल जानकर, अब ऐसा कौन भव्य है-जो कि मिथ्यात्व को छोड़कर शीघ्र ही सम्यक्त्व का ग्रहण नहीं करेगा? विष और अमृत दोनों के स्वाद का अंतर जानकर ऐसा कौन होगा जो अमृत नहीं पियेगा?—और विष को तुरन्त ही नहीं छोड़ेगा? सम्यक्त्व के सेवन से होनेवाले अनंत गुण कहे और मिथ्यात्व से होनेवाले अनंत दुःख भी बतलाये; इसप्रकार सम्यक्त्व के महान गुणों को और मिथ्यात्व के महान दोषों को जो जानते हैं, वे तत्क्षण ही मिथ्यात्व का सेवन छोड़ देते हैं और सम्यक्त्व की आराधना करते हैं।

हे भव्य! सम्यक्त्व के गुण एवं मिथ्यात्व के दोष—इन दोनों का स्वरूप हमने बतलाया, उनका विचार करके अब तुम्हें जो रुचे सो करो। हम विशेष क्या कहें? 'जो रुचे सो करो'—यह कहने में कहीं ऐसा भाव नहीं है कि मिथ्यात्व रुचे तो मिथ्यात्व करो। परंतु आचार्यदेव को यह विश्वास है कि सम्यक्त्व जैसा गुण और मिथ्यात्व जैसा दोष हमने बताया; उन गुण-दोष को जो जानेगा, उसको मिथ्यात्वभाव की रुचि स्वप्न में भी नहीं रहेगी, और वह सम्यक्त्वभाव का ही सेवन करेगा; इसप्रकार वह तो गुण-दोष का ज्ञान होते ही मिथ्यात्व का सेवन छोड़ देगा, और सम्यक्त्व की आराधना करेगा। जिसने गुण-दोष का

स्वरूप जान लिया, उससे कहना नहीं पड़ेगा कि तू दोष को छोड़ और गुण की रुचि कर। जो सम्यक्त्वादि गुणों की रुचि करे और मिथ्यात्वादि दोषों की रुचि छोड़े, उसी ने गुण-दोष को अच्छी तरह जाना है।

अरे जीव! मिथ्यात्व के सेवन से तू कैसा दुःखी हुआ, यह जानकर अब तो उसका सेवन छोड़; स्वप्न में भी उसका सेवन न कर। और सभी प्रकार से सम्यक्त्व की अपार महिमा जानकर उसे तू भज; स्वप्न में भी उसमें दोष मत लगा। अधिक क्या कहें? जिनेन्द्रदेव ने समवसरण में जो उपदेश दिया, उसका सार यही है कि सम्यक्त्वादि की आराधना कर और मिथ्यात्वादि का सेवन सर्वथा छोड़।

आज ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी सोनगढ़ के समवसरण में सीमंधर भगवान की प्रतिष्ठा का दिन है; समवसरण में भगवान ने क्या उपदेश दिया, उसकी यह बात है। सम्यक्त्व की आराधना जिसने की, उसने दिव्यध्वनि का समस्त सार जान लिया।

अहो, चैतन्यतत्त्व शांत-समभावरूप है; उसकी शांति का स्वाद जिसने नहीं चखा—शांतरसस्वरूप आत्मा को जिसने नहीं जाना, और बाह्य में दिगम्बर मुनिदशा धारण करके निर्ग्रंथरूप प्रवर्तता है, उससे उसे क्या साध्य है? चैतन्य की शांति तो मिली नहीं-तब उसके व्रतादि किस काम के? बाहर के परिग्रह को छोड़ा परंतु अंदर के मिथ्यात्व को न छोड़ा, शुभराग किया परंतु वीतरागी शांति का स्वाद न लिया तो उस जीव को बाह्य त्याग से या शुभराग से क्या लाभ हुआ? कुछ नहीं, अपितु उससे लाभ समझकर वह जिनमार्ग का विराधक हुआ। भाई! मिथ्यात्वरूपी विष का सेवन तेरे ज्ञान-चारित्र को भी विषरूप बना देगा, अतः ऐसे मिथ्यात्वरूपी विष को तू दूर से ही छोड़ दे और शीघ्र ही सम्यक्त्वरूपी अमृत का पान कर। सम्यक्त्व होते ही अनंत गुणों की शुद्धता स्वयं प्रगट होने लगती है। ऐसे सम्यक्त्व की आराधना करनेवाले जीव को भवसमुद्र का किनारा आ गया है, वह धन्य है, कृत्यकृत्य है, पंडित है, उसकी मनुष्य पर्याय सफल है, वह मोक्ष के मार्ग में है;—ऐसा कहकर श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा की है।

अतः हे भव्य जीवो! परम भक्तिपूर्वक तुम
सम्यक्त्व की आराधना करो... और मिथ्यात्व को अब तो छोड़ो!

आओ, सभी जीव आत्मा का अनुभव करो।
चैतन्यसमुद्र में आनंदमय शांतरस उमड़ रहा है!

समयसार के 32 वें कलश में आत्मा का अनुभव करने एवं उसके शांतरस में मग्न होने को कहते हैं। हे जीवो! यह चैतन्यसमुद्र भगवान आत्मा अपने शांतरस से उल्लसित हो रहा है, मोह का पर्दा दूर करके इसे देखो... और शांतरस से उमड़ते हुए ज्ञानसमुद्र में लीन होओ!

अहा, चैतन्य का शांतरस... जिसमें राग के किसी विकल्प का कर्तृत्व नहीं है, राग से रहित चैतन्यस्वाद का जिसमें वेदन हो रहा है, ऐसे शांतरस का समुद्र आत्मा में ही भरा पड़ा है। आत्मा के ऐसे शांतरस का जिसे अनुभव हुआ है, आत्मा का अतीन्द्रियसुख जिसके अनुभव में आया है, वह धर्मी जीव प्रमोदपूर्वक भावना करता है कि जगत के सभी जीव ऐसे सुख का अनुभव करो। आत्मा में शांतरस में सभी जीव मग्न होओ।

भगवान आत्मा ज्ञान का समुद्र है, वह अतीन्द्रिय सुख की गंभीरता से भरा है; सब जीवों में ऐसा स्वभाव है, अत: सभी जीव एकसाथ उसका अनुभव करो! देखो, स्वयं अपने को जो अनुभव हुआ है, उसकी प्रेरणा दूसरे को देते हैं। एकमात्र मोहरूपी पर्दा पड़ा है, उसको भेदज्ञान से दूर करते ही, जो महा चैतन्यसमुद्र आनंदमय शांतरस से उमड़ रहा है, वह साक्षात् अनुभव में आयेगा। हे जगत के जीवो! तुम सब ऐसा अनुभव करो... यही कल्याण है।

अज्ञानभाव से अब तक राग में लीन होकर दु:ख का ही अनुभव किया, अब भेदज्ञान प्रगट करो, राग के साथ एकत्वबुद्धि को छोड़कर, जिसमें रागरहित अतीन्द्रिय सुख भरा है, ऐसे शांतरस का अनुभव करो। अहो! सम्यक्त्व होते ही जो अपूर्व शांति होती है, उसमें परम अतीन्द्रिय सुख की गंभीरता भरी है, अनंतगुणों की शांति के रस का वेदन उसमें होता है। भगवान आत्मा स्वयं ही प्रगट होकर ऐसे शांतरसरूप परिणमित हुआ। यह शांतरस तीनलोक में सर्वोत्कृष्ट है। जीव का ऐसा शुद्धस्वरूप हमने बतलाया, अनेक प्रकार की युक्ति से एवं अनुभव से समझाया, तो उसे जानकर सब जीव ऐसा अनुभव करो। यह अनुभव का अवसर है, अत: आज ही अनुभव करो।

अरे, कहाँ कषाय के वेदन की अशांति! और कहाँ यह चैतन्य के शांतरस का

वेदन!—उनका अत्यंत भेद तुझे नहीं दिखता क्या? दोनों का भेद जानकर संसार के क्लेश से छूटने के लिये इस शांतरस में आ जा! अरे जीव! यह कहाँ तक अप्रतिबुद्ध रहना है? अब तो प्रतिबुद्ध हो और आत्मसन्मुख होकर शांतरस का पान कर। तेरी अशांति मिट जायेगी और अतीन्द्रियसुख से भरपूर शांति का समुद्र तेरे अंदर में उछलेगा। सम्यग्दर्शन होते ही तुझे ऐसी अतीन्द्रिय शांति का अनुभव होगा। संसार की ओर देखना छोड़ और स्वसन्मुख होकर ऐसे शांतरस का अनुभव कर।

वाह रे वाह! देखो तो, दिगंबर संतों ने करुणा से आत्मा के शांतरस के अनुभव की कैसी प्रेरणा की है! अहा, यह सुनकर कौन ऐसा अनुभव नहीं करेगा? सभी जीव अर्थात् जो कोई ऐसा उपदेश सुन रहे हैं, वे सभी जीव भेदज्ञान करके ऐसे आत्मा का अनुभव करो और शांतरस में निमग्न होओ! जगत के सभी रसों में आत्मा का शांतरस सर्वोत्कृष्ट है। राग में, पुण्यफल में या जड़ में उस शांतरस की झलक भी नहीं है, वह तो लोकोत्तर अतीन्द्रिय आत्मरस है; उस रस का स्वाद इन्द्रियों से या इन्द्रियज्ञान से भी नहीं आ सकता; अतीन्द्रियज्ञान द्वारा जो अनुभव में आता है, ऐसा यह महान शांतरस आत्मा में भरा है। हे जीवो! तुम स्वसन्मुख होकर उसका आनंदसहित अनुभव करो।

समवसरण की धर्मसभा में तीर्थंकर भगवंतों ने ऐसे शांतरसमय आत्मा के अनुभव का ही उपदेश दिया है। और आज (ज्येष्ठ कृष्णा 6) सोनगढ़ में समवसरण की प्रतिष्ठा के दिन हमें उसी उपदेश की ध्वनि श्रीगुरुप्रताप से सुनने को मिल रही है... अतः है महा भाग्यवान साधर्मीजनो! तुम सब ऐसे शांतरसमय आत्मा का अनुभव करो! सभी जीवों को यह अनुभव करनेयोग्य है। और उसमें भी यह तो भगवान महावीर के निर्वाण-महोत्सव का 2500वाँ महान वर्ष चल रहा है, उसमें आत्मा का अनुभव अवश्य करो। यही वीर का पंथ है... यही महावीर का महोत्सव है।

आत्मस्वभाव आनंद के स्वादवाला है

अशुभ या शुभ समस्त रागक्रियाएँ आत्मस्वभाव से विपरीत हैं, उनमें आनंद का नहीं, किंतु दुःख का ही स्वाद है।

[सोनगढ़ के स्वाध्यायमंदिर में समयसार की स्थापना का ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी के दिन 37वाँ वर्ष प्रारंभ हुआ; उस दिन का यह प्रवचन है। अहा, यह समयसार आत्मा को आनंद देनेवाला महान शास्त्र है; समयसार की रचना करके कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने भव्य जीवों पर महान उपकार किया है; और आज पूज्य कानजीस्वामी के द्वारा उसकी महान प्रभावना हो रही है... आप सोनगढ़ पधारिए... और कुन्दकुन्द शासन का महान प्रभाव साक्षात् देखिये...

— संपादक]

[मोक्षप्राभृत, गाथा 99-100; समयसार-कलश 34]

❀ आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका संवेदन मोक्ष का साधन है; राग की शुभ-अशुभ क्रियाएँ उससे विपरीत हैं, वे बंध का कारण हैं।

❀ राग की जितनी क्रियाएँ हैं, वे सब आत्मस्वभाव से विपरीत हैं, अतः वे मोक्ष का कारण कैसे हो सकती हैं?

❀ आत्मस्वभाव से प्रतिकूल ऐसी उन रागक्रियाओं की जिसको रुचि हो, जो उन्हें मोक्ष का साधन मानता हो, उसे वैराग्य कैसे हो सकता है?—नहीं हो सकता; क्योंकि वह तो रागक्रिया में लीन है। वह जीव शुभराग की चाहे जितनी क्रियाएँ करे परंतु मोक्ष के साधन का सेवन उसको किंचित् भी नहीं है।

❀ अहा, ज्ञानमय आत्मस्वभाव! उसके आनंद का स्वाद जिसे आये, उसे राग की क्रिया नहीं रहती। आनंदमय ज्ञानस्वभाव में राग की अपेक्षा किंचित् नहीं है; ज्ञानस्वरूप

आत्मा राग रहित ही जीनेवाला है।

❀ अरे भाई! तेरे आत्मस्वभाव के आनंद का स्वाद जिसमें न आये, ऐसी बाह्यक्रियाओं या राग से तुझे क्या लाभ? उसमें मोक्ष का साधन या आत्मा की शांति नहीं है।

❀ हे जीव! तू चाहे जितने व्रत-उपवास कर, किंतु जब तक तेरी चेतना राग से भिन्न होकर शांत भावरूप परिणमित न हो, तब तक तुझे कुछ भी लाभ नहीं होगा; तुझे तो राग का ही फल मिलेगा अर्थात् दुःख ही मिलेगा, और संसार-भ्रमण ही रहेगा; मोक्षसुख तुझे नहीं मिल सकता।

❀ धर्म तो उसे कहते हैं जिससे चैतन्यतत्त्व स्वयं आनंदरूप हो जाये। राग और ज्ञान की भिन्नता जानकर जिसने शुद्धोपयोग की शांति का स्वाद चख लिया है, उसे मोक्ष के हेतुरूप ज्ञान-चारित्र-वैराग्य आदि उत्तम गुण प्रगट होते हैं। उसके बिना बाह्य ज्ञान-चारित्रादि सब निष्फल है, उनमें आत्मा का हित नहीं है।

❀ चैतन्य की शांति का जो अपूर्व वेदन धर्मी को हुआ है, वह शरणरूप है, मरण के प्रसंग में भी वह शरण देनेवाला है। अहा, चैतन्य की शांति के अनुभव का स्मरण करते हुए भी धर्मी का अंतर स्वभाव के प्रति उल्लसित हो जाता है। अरे, चैतन्य की ऐसी शांति के अनुभव के समक्ष राग का कुछ भी मूल्य नहीं है। राग कदापि शुभ हो किंतु उसका स्वाद चैतन्य की शांति से विपरीत है।

❀ किसी ने अनेक शास्त्र पढ़े हों तथा व्रतादि शुभ आचरण भी अनेक प्रकार के किये हों, परंतु अंतर में यदि चैतन्यभाव की शुद्धता प्रगट न हुई तो उसका सब शास्त्र-पठन अज्ञान है, और उसके समस्त शुभ आचरण बालचारित्र हैं, अर्थात् मिथ्या आचरण है; उनमें आत्मा का सुख किंचित् भी नहीं है।

❀ जो परोन्मुखी शास्त्रज्ञान तथा परोन्मुखी आचरण है, उसकी शुभवृत्ति के स्वाद में अज्ञानी को सुख का प्रतिभास होता है—राग में सुखबुद्धि होती है, अतः राग से पार चैतन्यतत्त्व का मीठा-मधुर वीतरागी स्वाद उसके अनुभव में नहीं आता। अंतर्मुख चेतनस्वभाव में मग्न होने पर जो ज्ञान व आचरण प्रगट होता है, उसमें तो अपूर्व अतीन्द्रिय आनंद का वीतरागी स्वाद आता है।

❀ अहा, दिगम्बर संतों की वाणी अत्यंत स्पष्ट, निर्दोष एवं सीधा चैतन्यस्वरूप का स्पर्श करनेवाली है; यही सच्चा जैनमार्ग है। एक स्वद्रव्यसन्मुख शुद्ध परिणति और दूसरी परद्रव्यसन्मुख रागपरिणति, दोनों की जाति अत्यंत भिन्न है; उनके सर्वथा दो भाग करके संतों ने भेदज्ञान कराया है। ऐसा भेदज्ञान होते ही रागरहित चैतन्यशांति का वेदन होता है।—वह मोक्षमार्ग है।

❀ देखो, यह जैनधर्म के साधु! मोक्ष के साधनेवाले संत! उनकी दशा कैसी अद्भुत होती है! आत्मअनुभव का जो स्वकीय शुद्ध अतीन्द्रिय सुख, जिसके वेदन में अतिशय अनुरक्त है और समस्त परद्रव्यों से पराङ्मुख अत्यंत वैराग्यवंत है; उनका आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से विभूषित है, हेय-उपादेय तत्त्वों का जिन्हें यथार्थ-निश्चय है, और जो शुद्ध तत्त्व के ध्यान-अध्ययन में निरंतर तत्पर है।—ऐसे शांतरस में लीन दिगंबर मुनिराज उत्तम मोक्षस्थान को प्राप्त होते हैं।

❀ धन्य हैं मोक्ष के साधक संत! और धन्य हैं उनकी दशा! ऐसी मुनिवरों ने, एवं अविरति सम्यग्दृष्टि-धर्मात्मा ने भी, ऐसा निश्चय किया है कि अपना शुद्ध चेतनरूप स्वद्रव्य ही उपादेय है, और जितने बहिर्मुख रागादि परभाव हैं, वे सब हेय हैं। ऐसे निश्चय के उपरांत मुनिवर तो चैतन्य की अनुभूति में ऐसे लीन हुए हैं कि विषय-कषायों से तो अत्यंत विरक्ति हो गये हैं। उनकी अंतरपरिणति बाह्य पदार्थों से हटकर वैराग्य में तत्पर हुई है और चैतन्यसुख में तल्लीन हो गई है। अहा, उनके महिमा की क्या बात! वे तो मोक्षपद के बहुत समीप पहुँच गये हैं। उनकी पहिचान भी जगत को दुर्लभ है; उनके साक्षात् दर्शन का तो कहना ही क्या? धन्य है वह घड़ी!

❀ अहो! मोक्ष को साधनेवाले मुनिवरों के असंख्य आत्मप्रदेश तो सर्वत्र अतीन्द्रिय आनंदादि गुण समूह से भरपूर हैं; शरीर कदाचित् मलिन भी हो, किंतु वह आत्मा का अंग नहीं है; आत्मा तो अपने रत्नत्रयादि महान गुणों से सुशोभित अंगवाला है; ऐसे गुणों से संपन्न मुनिराज सदा ज्ञानभावना में मग्न रहते हुए उत्तम परम पद को पाते हैं, 14 गुणस्थान से पार ऐसे मोक्षपद को प्राप्त करते हैं, सर्वोत्कृष्ट शुद्धस्वभाव दशारूप सिद्धपद को पाकर वे लोकशिखर पर विराजते हैं।—ऐसी अलौकिक मुनिदशा होती

है, वह वंदनीय है। इससे विपरीत अन्य किसी उपाय से मोक्ष साधन माने, या अन्य प्रकार से मुनिदशा माने, उसे जैनमार्ग की खबर ही नहीं है।

❀ अहा चैतन्यतत्त्व! शांत-शांत गंभीरता से भरपूर्ण है, उसकी महिमा अपार है, वह विकल्पगम्य नहीं हो सकता; अंतर्मुख होकर अतीन्द्रिय स्वसंवेदन के द्वारा ही गम्य हो- ऐसा यह चैतन्यतत्त्व है। जगत के सभी महापुरुष ऐसे चैतन्यतत्त्व का वंदन करते हैं, उसका स्तवन व ध्यान करते हैं; अत: हे भव्य! तू भी अपने अंतर में विराजमान उसी तत्त्व को ध्या!

❀ चैतन्यपद की महानता के समक्ष पुण्य के पद नहीं टिक सकते। पुण्य से जिनको इन्द्रपद मिला, वह इन्द्र भी चैतन्यपद में नम्रीभूत हो जाता है। अरे, तीर्थंकर भी ऐसे तत्त्व का अंतर में ध्यान कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। जिसमें से पंच परमेष्ठीपद प्रगट होता है, ऐसा तेरा यह महान तत्त्व, उसे जानकर उसी की आराधना कर। सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्र-तप ये सब आत्मा में ही हैं, अत: ऐसे आत्मा को ही शरणरूप जानकर उसकी आराधना कर। अहा, गणधरादि मुनिवर जिसको ध्याते हैं, उस चैतन्यतत्त्व की महिमा कितनी महान है! अनुभवनज्ञान से ही जिसका पार पा सकें—ऐसी जिसकी महिमा है। ऐसी आत्मा को बतलानेवाले महान परमागम श्री समयसार की (सोनगढ़ में) स्थापना का आज मंगल दिन (ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी) है। अहा, यह समयसार आत्मा को आनंद देनेवाला महान शास्त्र है; समयसार की रचना करके कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने भव्य जीवों पर महान उपकार किया है और वर्तमान में श्री कानजीस्वामी द्वारा उसकी महान प्रभावना हो रही है। (-जय महावीर)

अडिग रहना

हे जीव! चाहे जैसी प्रतिकूलता हो, सांसारिक दु:खों ने चारों ओर से घेर लिया हो, परंतु वीतरागी देव-गुरु-धर्म के प्रति कभी अनादर न करना, उनके प्रति परम उल्लास और विनय में किंचित् भंग न पड़ने देना... मार्ग से चलित न होना... शिथिल न होना... बस, मार्ग में तेरी यह अडिगता तुझे समस्त प्रतिकूलताओं के मध्य मार्ग करके आत्महित प्रदान करेगी।

महावीर प्रभु का निर्वाण-महोत्सव [३]

महावीर भगवान हमारे परम इष्टदेव हैं... उनके निर्वाण महोत्सव के 2500 वें महान वर्ष में उनके प्रति पवित्र अंजलिरूप लेखमाला का यह तीसरा लेख है।

(गतांक से आगे - संपादक)

भगवान महावीर ने जो मार्ग बतलाया है, उसे समझकर उस मार्ग पर चलना-यह हमारा कर्तव्य है। भगवान ने जगत के पदार्थ अनादि-अनंत कहे हैं। मैं एक आत्मा भी अनादि-अनंत हूँ, मुझे न तो किसी ने बनाया है, न मेरा कोई नाश करनेवाला है। मैं अपने ही आश्रित रहकर अपना कल्याण करने की शक्तिवाला हूँ।—ऐसा आत्मनिर्णय करना हमारा प्रथम कर्तव्य है।

भगवान महावीर आत्मज्ञानी, गंभीर, वैराग्यवंत एवं निर्भय थे। किसी से डरना उनके स्वभाव में ही न था। वे विवेकवान और शूरवीर महापुरुष थे। उन्हें पहिचानकर, जिस मार्ग पर वे गये, उसी मार्ग पर हमें चलना है।

राजकुमार वर्द्धमान जब युवा हुए तब अनेक राजा अपनी-अपनी राजकन्याओं का उनके साथ विवाह करने के लिये लालायित हुए। अपने लाड़ले इकलौते पुत्र को विवाहित देखने की माता-पिता की भी बहुत अभिलाषा थी, और इसके लिये माता-पिता ने वर्द्धमान कुमार को बहुत समझाया; किंतु जिस वैरागी महात्मा का चित्त मोक्षसुंदरी की साधना में लगा हो, वह अन्य किसी कन्या के साथ विवाह करके संसार में कैसे पड़ता? महावीर ने न विवाह किया, और न वे संसार में रहे; उन्होंने तो मोक्षसुंदरी के लिये दीक्षा लेकर संसार को छोड़ दिया, राजवैभव छोड़कर वे मुनि हुए। इसप्रकार भगवान महावीर ने आत्मसाधक जीवों के लिये एक महान आदर्श उपस्थित किया। आत्मसाधक के लिये संसार का संबंध जितना कम हो, उतना अच्छा है। आत्मार्थी जीवों को अपनी समस्त शक्ति आत्मा को साधने में ही केन्द्रित करना चाहिये। महावीर की तरह संसारसुख छोड़कर आत्मसुख प्राप्त करना ही हमारा कर्तव्य है।

मुनिराज महावीर आत्मध्यान के द्वारा सर्वज्ञ हुए। सर्वज्ञ होने के पश्चात् दिव्य उपदेश द्वारा उन्होंने जो अद्भुत आत्मतत्त्व समझाया, उसे समझकर, गौतम इन्द्रभूति-अग्निभूति-

वायुभूति आदि कितने ही जीव सर्वज्ञ हुए और मोक्ष गये। उनके बाद सुधर्मस्वामी, जम्बूस्वामी आदि अनेक जीव भी सर्वज्ञ होकर मोक्ष पधारे। उनके बाद आज तक के ढाई हजार वर्षों में भद्रबाहु-श्रुतकेवली, माघनंदी, धरसेन, जिनसेन, गुणधर, पुष्पदंत, भूतबली, कुन्दकुन्दस्वामी, उमास्वामी, समन्तभद्रस्वामी, पूज्यपादस्वामी, नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती, वीरसेनस्वामी, अकलंकस्वामी, विद्यानंदीस्वामी, अमृतचंद्रस्वामी, पद्मप्रभस्वामी आदि अनेकानेक श्रुतधारी महान संत वीरप्रभु के जिनशासन में हुए; उन्होंने स्वयं मोक्षमार्ग साधकर जिनशासन को सुशोभित किया, और हमें भी मोक्षमार्ग का अमूल्य वीतरागी उत्तराधिकार देते गये। अहा, हमें यह कितनी महान आनंद की बात है कि वीरप्रभु के ऐसे अद्भुत चैतन्यनिधान के हम उत्तराधिकारी हुए? उसे समझकर हमें महान लाभ लेना है।

भगवान महावीर के शासन में वस्तुस्वरूप के जो सिद्धांत बतलाये हैं, उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं—

❀ इस जगत में चेतनस्वरूप आत्मा है, और चेतनारहित जड़ पदार्थ हैं। वे सब पदार्थ भिन्न-भिन्न अपने-अपने स्वभावधर्मों में रहते हैं।

❀ आत्मा अनंत है; प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है; स्वभाव से सभी आत्मा समान हैं, छोटे-बड़े नहीं हैं। अवस्था छोटी-बड़ी देखकर किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं करना चाहिये। आज का छोटा आत्मा भी कल अपने स्वरूप को साधकर बड़ा परमात्मा बन सकता है।

❀ हम महावीर प्रभु जैसे अपने आत्मा के महान स्वभाव को पहिचानकर पुरुषार्थ करें तो हम भी भगवान बन सकते हैं। ऐसा लाभ हमें महावीर भगवान की पहिचान से होता है।

❀ 'भगवान' कहीं आत्मा से अलग नहीं होते। जो आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करता है, वही भगवान बन जाता है। जगत में एक भगवान ही नहीं किंतु अनंत हैं; और भगवान होने का मार्ग भी सदैव खुला है; अतः आत्मा को पहिचानकर जीव नये भगवान बन सकते हैं। महावीर की तरह हम भी यदि पुरुषार्थ करें तो हम भी भगवान बन जायें।

❀ भगवान जगत की किसी भी वस्तु के कर्ता-हर्ता नहीं हैं, और न उन्हें किसी के प्रति

राग-द्वेष है; वे तो वीतरागभाव से अपने ज्ञातास्वभाव में रहकर सदाकाल चैतन्यसुख में ही लीन रहते हैं। उन्हें कभी दु:ख, इच्छा या अवतार नहीं होते। वे जगत को न बनाते हैं, न उसका नाश करते हैं; मात्र उसे जानते हैं। जगत के किसी भी पदार्थ को भगवान ने बनाया है—ऐसा मानना—यह महान भूल है। जैसे भगवान जगत का कर्ता-हर्ता नहीं है, वैसे हमारा जीव भी, अपने भावों के अतिरिक्त जगत में अन्य किसी का कर्ता-हर्ता नहीं है—ऐसा हमें जानना चाहिए। ऐसी जानकारी से मोह का नाश होकर वीतरागभाव प्रगट होता है, वह अपूर्व लाभ है।

❀ ज्ञान करना तो हमारे आत्मा का स्वभाव है, परंतु क्रोधादि कषाय करना आत्मा का स्वभाव नहीं है। क्रोध में दु:ख है, किंतु ज्ञान में दु:ख नहीं; ज्ञानस्वभाव में तो सुख और शांति है। इसप्रकार ज्ञानभाव और कषायभाव को सर्वथा भिन्न जानकर भेदज्ञान करना ही धर्म की रीति है।

❀ जो जीव ऐसा भेदज्ञान करे और कषायों को दु:खरूप जाने, वह जीव हिंसा-असत्य-चोरी-मैथुन व परिग्रह आदि पापभावों का कभी आदर नहीं करता, एवं शुभराग के कषायभावों को भी वह अच्छा नहीं मानता; कषायों से रहित अपना ज्ञान ही सबसे अच्छा है, जिसमें शांति व सुख है, ऐसा समझकर ज्ञान के अनुभव से वह मोक्षसुख प्राप्त करता है। इसप्रकार रागरहित ज्ञान का अनुभव ही भगवान महावीर का मार्ग है।

[''ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्।''—समयसार]

जय महावीर

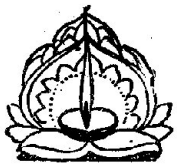

भव छेदन का उद्यम करो!

हे जीव! ज्ञानस्वभाव से अधिक ऐसे अपने आत्मा को जान तो तेरे भव का छेद हो जावेगा। हे भाई! ऐसा मनुष्य भव प्राप्त करके भी यदि तुमने भव के छेद का उपाय नहीं किया तो मनुष्यभव पाकर क्या किया? ऐसा समझ कि यह भव, अनंत भव के छेद के लिये है; चारों गति के भव का अभाव करने के लिये ही यह भव है। अत: अन्य सबका प्रेम छोड़कर, आत्मा के परम आनंद की प्राप्ति का ही पिपासु होकर तू भव के छेद का उद्यम कर।

जिसे चैतन्य के परम आनंद की ही पिपासा है, संसार की अन्य कोई भावना जिसके अंतर में नहीं है, अरे! मेरे चैतन्य का अमृत मेरे ही अंतर में है—इसप्रकार जिसकी जिज्ञासा का झुकाव आत्मा की ओर हुआ है—ऐसे भव्य जीव आनंद के लिये—हित के लिये वीतरागी संतों ने शास्त्रों की रचना की है। संसार से तिरनेवाले महापुरुषों ने मोक्ष को साधते-साधते और भव को छेदते-छेदते जो उपदेश दिया, वह भी भवछेदक ही है; मोक्षार्थी जीव उसे झेलकर, आत्मसम्मुख होकर भव का छेदन करके परम आनंद को प्राप्त होते हैं।

—: वीतराग प्रभु के उज्ज्वल मार्ग में राग शोभा नहीं देता :—

जिनमार्ग में वीतरागता का ही मूल्य है, राग का कोई मूल्य नहीं।
राग का मूल्य संसारमार्ग में है, मोक्षमार्ग में नहीं।

भगवान का मोक्षमार्ग तो सम्यक्त्वादि वीतरागभाव से उज्ज्वल है-सुशोभित है; अरे, ऐसे उज्ज्वल मार्ग में राग की मलिनता कैसी? राग स्वयं मलिन है, उससे कहीं जिनमार्ग की शोभा हो सकती है?—नहीं; राग का कोई भी अंश वीतराग जिनमार्ग में शोभा नहीं देता। हे भाई! यदि राग को अच्छा समझोगे तो तुम वीतरागमार्ग में नहीं चल सकते। वीतरागमार्ग में तो वीतरागभाव से ही चला जा सकता है।

स्व. कविवर दीपचंदजी कृत

ज्ञान-दर्पण

(अंक 348 से आगे)

[बहिरात्मा-कथन]

मणि के मुकुट महा सिरपै विराजतु हैं, हीए माहिंहार नाना रतन के पोते हैं।
अलंकार और अंग अंगमैं अनूप बने, सुंदर स्वरूप दुति देखैं काय गोए हैं।
सुरतरु कुंजनि मैं सूरसंघ साथ देखैं, आवत प्रतीति ऐसी पुन्य बीज बोए हैं।
करम के ठाठ ऐसैं कीने हैं अनेकबार, ज्ञान बिनु भाए यौं अनादिही के सोए हैं॥118॥

सूरपरजायनि मैं भोग भाव भाव भये जहाँ, सुख रंग राचौ रति कीनो परभाव मैं।
रंभा हाव भावनिको निरखि निहारि देखैं, प्रेम परतीति भई रमणिरभाव मैं।
देखि देखि देवनि के पुंज आय पाँय परैं, हियमैं हरष धरैं लगनि लगाव मैं।
परपंचनि मैं संचिकै करम भारी, संसारी भयौ फिरै जु पर के उपाय मैं॥119॥

(छप्पय)

अजर अमर अविलिप्त, तत्प भय जहँ नाहीं। देव अनंत अपार, ज्ञान धारक जगमाहीं।
जिहिं पाइक जगसार, जानि जे भवदधि तरि हैं। गुरु निरगंथ महंत संत सेवा सब करि हैं।
देववाणि गुरु परखि यह, करि प्रतीति मनमैं धरै। कहै दीपचंद ह्वै बंध सो,
अविनासी सुखकौं वरैं॥120॥

(सवैया इकतीसा)

धरैं गुणवृंद सुखकंद है सरूप मेरो, जामैं परकंद कौ प्रवेश नाहिं पाहए।
देव भगवान चिदानंद ज्ञानज्योति लीऐ, अचल अनंत जाकी महिमा बताइए।
परम प्रताप मैं न ताप भव भासतु है, अचल अखंड एक उर मैं लखाइए।
अनुभौ अनूप रसपान लै अमर हूजे, सासतो सुथिर जस जुग जुग गाइए॥121॥

शब्दों से पार आत्मा का सीधा संवेदन

आत्मस्वरूप श्रवणमात्र न रखकर अनुभवगम्य करना।

साहित्य में ऐसा माना जाता है कि हजारों शब्दों के प्रभाव से एक चित्र का प्रभाव अधिक होता है; और हजारों शब्दों से भी अधिक प्रभाव एक सीधे स्पर्श का होता है। दु:खों से घिरे हुए किसी मनुष्य को घंटों तक सहानुभूति के हजारों शब्दों से जो सांत्वना मिलती है, यदि प्रेमपूर्वक उसके शिर पर या पीठ पर हाथ फेरकर थपथपाया जाये तो उसे अधिक सांत्वना मिलेगी; वहाँ शब्दों की आवश्यकता नहीं रहेगी... उसीप्रकार—

अचिंत्य महिमावंत आत्मस्वरूप, उसका चाहे जितना वर्णन हजारों शब्दों के द्वारा पढ़ने में या सुनने में आये तो भी वह पूरा स्पष्ट लक्षगत नहीं हो सकता, परंतु जब अंतरज्ञान से उस चैतन्यतत्त्व का सीधा स्पर्श अर्थात् अनुभव किया जाये, तब वह स्वरूप स्पष्ट लक्षगत हो जाता है। चैतन्यस्वरूप का सच्चा विवेचन करनेवाले शास्त्रों से हजारों शब्द पढ़ने में आयें, या किसी ज्ञानी के मुख से वर्षों तक सुनने को मिले, किंतु उसका सच्चा अनुभव तो तभी होता है—जबकि शब्दातीत (-इन्द्रियातीत) होकर, ज्ञान अंतर्मुख होकर अंतर में आत्मा का सीधा स्पर्श करे। किसी ने कहा है कि—

हजारों वर्षों के शास्त्रज्ञान से एक क्षण का अनुभवज्ञान श्रेष्ठ है।

एक क्षण का आत्मज्ञान जो आनंद देता है, वह हजारों शब्दों का शास्त्रज्ञान नहीं दे सकता। उस अनुभवज्ञान में शब्दों का आलंबन नहीं रहता।

जैसे, अग्नि की उष्णता का और बर्फ की शीतलता का वर्णन शब्दों से चाहे जितना सुन लिया जाये, परंतु उस अग्नि के या बर्फ के सीधे स्पर्श से उष्णता या शीतलता का जैसा साक्षात् वेदन होता है, वैसा शब्दों के सुनने से या पढ़ने से नहीं हो सकता। उसीप्रकार हजारों वर्षों तक हजारों शब्दों को पढ़कर या सुनकर अद्‌भुत चैतन्यतत्त्व के महा आनंद की जो जानकारी हो, उसकी अपेक्षा शब्दों से पार ऐसे ज्ञान को स्वसन्मुख करने से उसका जो स्पष्ट-प्रत्यक्ष ज्ञान एवं महान आनंद का वेदन होता है, वह कुछ और ही प्रकार का होता है। शब्दज्ञान (शास्त्रज्ञान) कितना भी हो किंतु वह इन्द्रियज्ञान है, अतीन्द्रिय महापदार्थ आत्मस्वभाव को जानने की या

उसका वेदन करने की महान शक्ति उसमें कभी नहीं आ सकती; वह शक्ति तो इन्द्रियातीत स्वसंवेदन ज्ञान में ही है।

जैसे, अविवाहित स्त्री प्रसूति की वेदना का वर्णन चाहे जितना पढ़े या अन्य अनुभवी के पास से सुने, किंतु उसका सच्चा अनुभव तो जैसा स्वयं को प्रसूति होने पर होता है, वैसा पढ़ने या सुनने से नहीं हो सकता; स्वानुभव से जो ज्ञात होता है, वैसा शब्दों से नहीं होता। उसीप्रकार अनुभव के महा आनंद का वर्णन अनुभवी-ज्ञानी के पास से चाहे जितना सुनो या अनुभवज्ञान के कितनो भी शास्त्र पढ़ो, और अनुभव की कितनी भी प्रशंसा करो, परंतु अंतर में अपने स्वानुभव के बिना चैतन्य के महा आनंद का सच्चा स्वाद नहीं आ सकता। अतः समयसार में आचार्यदेव ने कहा है कि हे जीव! हम जो शुद्धात्मा दर्शाते हैं, उस शुद्धात्मा को तुम मात्र श्रवण करके नहीं किंतु अपने स्वानुभव से प्रमाण करना; श्रवणमात्र मत रखना, अनुभवगम्य करना।

—००—००—

—: सूचना :—

सोनगढ़ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर जिन साधर्मी भाईयों ने बोली या तीर्थरक्षा फंड के लिये दान की घोषणा की थी, उनसे अनुरोध है कि वे दान की रकम का ड्राफ्ट बैंक ऑफ इंडिया, सोनगढ़ अथवा भावनगर के किसी भी बैं का ड्राफ्ट भेजें। नीचे लिखे हुए दो नाम में से किसी एक नाम का ड्राफ्ट भेजें—

(1) श्री परमागममंदिर प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति, सोनगढ़

(2) श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, बम्बई

प्रतिष्ठा-महोत्सव का हिसाब पूरा करना है, अतः आपसे दान की रकम शीघ्र भेजने का अनुरोध किया जाता है।

पताः—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) 364250

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) :— पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। सवेरे श्री अष्टपाहुड के भावपाहुड पर तथा दोपहर को श्री समयसार कलश-टीका पर पूज्य स्वामीजी के सुंदर आध्यात्मिक प्रवचन हो रहे हैं। जिनेन्द्र-पूजा एवं भक्ति आदि का कार्यक्रम नियमितरूप से चलते ही रहते हैं।

छिंदवाडा (म.प्र.) :— शिक्षण-शिविर का भव्य आयोजन गतमास में किया गया। अनेक विद्वान आये थे। हजारों जिज्ञासुओं ने तत्त्वज्ञान का लाभ लिया। वीतराग-विज्ञान का मेला देखकर सभी को बहुत प्रसन्नता हुई। शिविर का उद्घाटन सागर निवासी सेठ श्री भगवानदासजी ने किया। आपको वीतरागविज्ञान के प्रचार की अच्छी भावना है, और वृद्धावस्था होते हुए भी जगह-जगह पहुँचकर प्रभावना के कार्यों में उत्साह से भाग लेते हैं। पूज्य स्वामीजी के प्रभाव से सोनगढ़ से जो अध्यात्म का बिगुल बजा है, उसकी ध्वनि आज सारे भारत में गूँज रही है और तत्त्वज्ञान के लिये सारा जैनसमाज जागृत हो गया है। नागपुर, सोलापुर, कारंजा आदि स्थानों पर भी शिक्षण-शिविर के लिये माँग आ रही है।

छिंदवाडा में शिक्षण-शिविर का उद्घाटन करते हुए सागर के श्रीमान सेठ भगवानदासजी ने कहा कि—जीवन में यदि कुछ प्राप्त करने लायक है तो एकमात्र वीतराग-विज्ञान ही है, आराधना करने लायक भी यही वीतराग-विज्ञान है, तथा प्रचार व प्रसार भी यदि किसी का करने लायक है तो मात्र वीतराग-विज्ञान का ही, क्योंकि इसे भूलकर ही आज तक हमने दुःख उठाया है। सुख का एकमात्र साधन वीतराग-विज्ञान ही है। पंडित दौलतरामजी ने कहा है—

'तीन लोक में सार, वीतराग-विज्ञानता' और '
ज्ञान समान न आने जगत में सुख को कारण'

ज्ञान के समान जगत में और कोई सुख का कारण नहीं है। वीतराग-विज्ञान ही परम अमृत है। यही जन्म-मरण का नाश करनेवाली परम औषधि है। हमें प्रेरणा देते हुये वे लिखते हैं कि करोड़ों उपाय करके भी यह वीतराग-विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। 'कोटि उपाय बनाय,

भव्य ताको उर आनों।' आज पूज्य स्वामीजी ने मोक्षमार्ग के रहस्य को उद्घाटित कर हम पामर प्राणियों पर महान उपकार किया है, अत: वे ही तत्त्व के सच्चे उद्घाटक हैं। ऐसे वीतरागमार्ग के साधनभूत जिनवाणी के शिविर को उद्घाटित कर कौन हर्षित नहीं होगा? हम अपने बालकों में वीतराग-विज्ञान का बीजारोपण करें। लाभ लेनेवाले हजारों बालकों में से यदि एक-दो बालकों ने भी आत्मस्वरूप की प्राप्ति कर ली तो वे सिद्धदशा को शीघ्र प्राप्त होंगे, तब हमारा और आपका संपूर्ण श्रम सार्थक हो जायेगा। मेरी तो यही उत्कृष्ट भावना है कि—वीतराग-विज्ञान का, घर-घर प्रचार हो, सब जीव तत्त्वज्ञान प्राप्त करके अपने में सच्चे मोक्षमार्ग और सच्ची शांति का उद्घाटन करें।

विदिशा (म.प्र.) :— गतमास में श्रुतसप्ताह के उपलक्ष में पंचपरमेष्ठी विधान एवं आध्यात्मिक प्रौढ़ शिक्षण-शिविर का आयोजन हुआ। इस मंगल अवसर पर संगमरमर के पटियों पर खुदे हुए परमागम का उद्घाटन किया गया। श्री वीरसागरजी मुनिराज भी पधारे थे।

— ज्ञानचंद जैन

वढवाण शहर (सौराष्ट्र) :— वर्द्धमान भगवान का दूसरा भव्य दिगम्बर जिनमंदिर बन रहा है, उसकी शिलान्यास विधि अषाढ़ शुक्ला अष्टमी (तारीख 27-6-74) के दिन हो रही है। वढवाण पूज्य बेनश्री चंपाबहिन का जन्मस्थान भी है।

गढडा शहर (सौराष्ट्र) :— सोनगढ़ से करीब 40 कि. मी. दूरी पर गढडा शहर में दिगम्बर जिनमंदिर बना है, उसमें वेदी-प्रतिष्ठा का भव्य महोत्सव वै.सु. 14 से ज्येष्ठ वद 2 तक चार दिन हुआ। पूज्य श्री कानजीस्वामी बचपन में कुछ साल गढडा शहर में रहे थे, यह आपके पूर्वजों का गाँव है।

इंदौर :— जैनमंदिर, तिलकनगर में तारीख 4-5-74 से 18दिन का जैनधर्म शिक्षण-शिविर उल्लासपूर्वक जैनयुवक मंडल की ओर से चला था।

इंदौर से सनतकुमारजी जैन लिखते हैं —

आपके द्वारा प्रेषित अंग्रेजी में अनुवादित 'जैनबालपोथी' की प्रतियाँ एवं 'अहिंसा परमो धर्म' की प्रति प्राप्त हुई। पुस्तकों का अवलोकन कर अंतर से अतीव आनंद का अनुभव हुआ। आज के इस अशांतमय युग में शांति, ज्ञान और सदाचार सिखलाने वाले सत् साहित्य

की बहुत आवश्यकता है। बालपन से बच्चों में वीतरागता एवं स्वयं कौन है ? इसके समझ की आवश्यकता है। अत: वे अपने वर्तमान के जीवन से आगे के भावों का अभाव कर सकें। सोनगढ़ के एक सप्ताह के कार्यक्रम में भाग लेकर मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। उन सभी दिनों पूज्य गुरुदेव का दर्शन एवं भगवान की वाणी का रसास्वादन एवं पूज्य बेनश्री-बहिन की भक्ति—तीनों का जो लाभ मिला उसके लिये हम अपने आपको कृतार्थ मानते हैं। पूज्य गुरुदेव का उपकार जिसप्रकार मानें—जिन्होंने हमारा जीवन ही बदल दिया है।

खंडवा से सीमंधर जैन लिखते हैं—

आपके द्वारा भेजी गई 'Jain Primer' और 'अहिंसा परमो धर्म' पुस्तकें प्राप्त हुईं। जैसे ही सोनगढ़ से कोई भी भेंट आती है, मन में एक अतीव आनंद एवं उल्लास सहज हो जाता है। पुस्तकें पढ़कर इतना हर्ष एवं गौरव हुआ कि आज जैनधर्म के सिद्धांत मात्र भारतवर्ष में ही प्रसारित होकर न रहे, वरन विदेश में भी इसकी सुलभता उनकी ही भाषा में हो रही है। वास्तव में भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव मनाने की सार्थकता इसी में है कि उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत जनजन तक पहुँचे एवं उन्हीं के पद चिह्नों पर चलकर हम अपनी आत्मा को भी महावीर सदृश्य बनाये।

आज इस बीसवीं सदी के युग में स्वर्णपुरी से अध्यात्मरस की मधुर-वाणी से स्वामीजी की गर्जना मोहनिद्रा में सोये हुये को जगा रही है, यह हमारे महान पूर्व पुण्य का फल है! शायद यह 100 वर्षों में धर्म का ऐसा सुकाल आ गया है। जिसप्रकार कुन्दकुन्द भगवान साक्षात् विदेहक्षेत्र से भगवान की वाणी उसी पर्याय से लेकर आये, वैसे ही स्वामीजी भी वही वाणी उस पर्याय से ही न लाकर अन्य पर्याय धारण कर यहाँ लाये हैं। इसमें निसंदेह कोई भ्रांति नहीं है। यह परम सत्य है।

पूज्य स्वामीजी की वाणी को हम जैसे साक्षात् में न ले सकनेवाले जीवों को आपकी सशक्त लेखनी द्वारा पुस्तकारूढ़ कर और अधिक स्पष्टरूप में स्वामीजी के हार्द की बात हम तक सहज पहुँच जाती है। जीवन में इससे और उत्कृष्ट निमित्त और कौन सा हो सकता है ?

सीमंधर जैन, खंडवा

—: विशेष सूचना :—

— सोनगढ़ में इस वर्ष श्रावण मास का प्रौढ़ शिक्षणवर्ग नहीं लगेगा। इस वर्ष शिक्षणवर्ग बंद रखने का निर्णय हुआ है। और सब कार्यक्रम नियमित चलेंगे। पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ लेने के लिये आप सोनगढ़ आ सकते हैं।

— **दाहोद** (गुजरात) में :— अष्टाह्निका महापर्व के उपलक्ष में तारीख 17-6-74 से तारीख 1-7-74 तक श्री सिद्धचक्रमंडल विधान एवं वीतराग विज्ञान शिक्षण-शिविर का भव्य आयोजन हो रहा है।

— आत्मधर्म का नया वर्ष वैशाख मास से प्रारंभ हो चुका है। कृपया, अपना नये वर्ष का चंदा रुपये 4 (चार रुपये) निम्न पते पर मनीआर्डर से भेज दीजिये—

आत्मधर्म कार्यालय : सोनगढ़, सौराष्ट्र-364250

स्वर्णपुरी के संत

(बम्बई में 85वीं जन्म-जयंती पर लेखक द्वारा पठित)

स्वर्णपुरी के संत तुम्हारी जन्म जयंती का शुभदिन।
स्वर्णपुरी के संत प्रफुलित हुआ आज मन का उपवन॥
स्वर्णपुरी के संत आज यह धन्य हुआ मेरा जीवन।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारे चरणों में मेरा वंदन॥
स्वर्णपुरी के संत मुम्हें है भावांजलि सादर अर्पण।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥1॥

सागर की लहरें करती हैं आज तुम्हारा ही स्वागत।
हृदय हिंडोले झूलो गुरुवर नव वसंत सम अभ्यागत॥

आज तुम्हारी अनुकंपा से यह मस्तक है श्रद्धानत।
भव्य दिव्य चैतन्यविलासी आत्मध्यान में तुम हो रत।
तुम्हें समर्पित है भावों का मलयागिर शीतल चंदन।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥2॥

इस भारत की पावन भू पर तुमने गुरुवर जन्म लिया।
संत कानजीस्वामी गुरु सौराष्ट्र प्रान्त को धन्य किया॥
किया अध्ययन समयसार का कुन्दकुन्द को नमन किया।
सीमंधर प्रभु के उपदेशों का जीवन भर मनन किया।
स्वपर भेद को जाना तुमने क्या है जड़ क्या है चेतन।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥3॥

पाखंडों की नींव हिला दी रूढ़िवाद का कर संहार।
मिथ्यामयी मान्यताओं पर जमकर किया अपूर्व प्रहार॥
दृढ़ता से तुमने बतलाया निश्चय श्रेष्ठ हेय व्यवहार।
सम्यक्श्रद्धा से यह चेतन हो जाता भवसागर पार॥
पाप-पुण्य को हेय बताया उपादेय निज अवलंबन।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥4॥

सद्गुरुदेव कानजीस्वामी जैनधर्म के तुम मर्मज्ञ।
आत्मधर्म के ज्ञाता सातों तत्त्वों के वक्ता स्थितप्रज्ञ॥
तुम चिरायु हो सहस्त्रायु हो मुमुक्षुओं के हित तत्त्वज्ञ।
यही भावना आप बने गुरु आगामी भव में सर्वज्ञ॥
भावी सिद्धात्मा को मेरा कोटि-कोटि शत शत वंदन।
स्वर्णपुरी के संत तुम्हारा आज हृदय से अभिनंदन॥5॥

—राजमल पवैया, भोपाल

प्रवचन में से आत्मबोधप्रेरक पच्चीसी

आत्महित की प्रेरणा देते हुए पूज्य स्वामीजी बारम्बार कहते हैं कि—

1. अहो, यह तो अपने अंतर के अत्यंत सुंदर चैतन्यतत्त्व की बात है।
2. ऐसे महान आत्मा का अनुभव करना वह धीर पुरुषों का कार्य है।
3. हे जीव! आत्मानुभव के इस अवसर में तू बाहरी झंझट में मत पड़ना।
4. अरे, आत्महित का ऐसा अवसर मिला, तब अपनी शक्ति को इधर-उधर मत गँवा।
5. तीर्थंकरों का ऐसा सुंदर मार्ग तुझे मिला है, तो अब दुनिया के सामने देखकर मत रुकना।
6. यह बात तो उसके लिये है—जिसे आत्महित करना हो।
7. अपने गुण का फल अपने में आता है, दूसरों को दिखाने का क्या काम है?
8. दुनिया के लोग न पहिचानें, इससे कहीं धर्मी के गुणों का फल चला नहीं जाता। और
9. दुनिया के लोग बहुत प्रशंसा करें, उससे कहीं अपने को लाभ नहीं हो जाता।
10. तीर्थंकरों का महादुर्लभ मार्ग महान भाग्य से अपने को मिला है, तो अत्यंत सावधानी से उसकी आराधना करना, चूकना मत।
11. सुख का अपार भंडार आत्मा में भरा है, उसमें से चाहे जितना ले लो!
12. अरे, अपने सुख के भंडार को छोड़कर तू व्यर्थ दुःखी क्यों होता है!
13. हे जीव! तूने दुःख तो बहुत भोगे अब बस कर; अब तो सुख का स्वाद ले।
14. चैतन्य का अद्भुत शांतरस चखने के लिये बाह्यवृत्ति का रस छोड़!

15. पर को जानने का रस छोड़कर, आत्मा को जानने का रस प्रगट कर।

16. आत्मा का शांतरस अति गंभीर है, उसे जानने के लिये सर्वथा अंतर्मुख होओ!

17. ज्ञानी तुझे 'भगवान' कहकर बुलाते हैं, तुझे पामरता शोभा नहीं देती।

18. छोटी-छोटी बातों में राग-द्वेष-हर्ष-विषाद करेगा तो आत्मा की साधना कब करेगा?

19. एकबार रागरहित चैतन्य का शांतरस चख ले, तो सारे संसार का रस छूट जायेगा।

20. धर्मी के अनुभव में चैतन्यवस्तु अपने परम आनंदसहित प्रगट होती है।

21. अजीव से भिन्न जीव को जानते ही सहज आनंदरस का वेदन होने लगता है।

22. ज्ञान-प्रकाश और राग-अंधकार दोनों के बीच कर्ता-कर्मपना कभी नहीं है।

23. जैसे चेतन का काम कभी जड़ नहीं है, उसीप्रकार ज्ञान का काम राग-द्वेष नहीं है।

24. ज्ञान और राग दोनों के स्वाद को भिन्न जानो, एक की दूसरे में मिलावट मत करो।

25. अहो, ऐसे ज्ञानस्वरूप के अनुभव का यह अवसर है। अतः हे जीवो! तत्काल ही आत्मबोध करके अनुभव करो!

[इति आत्मबोध प्रेरक पच्चीसी]

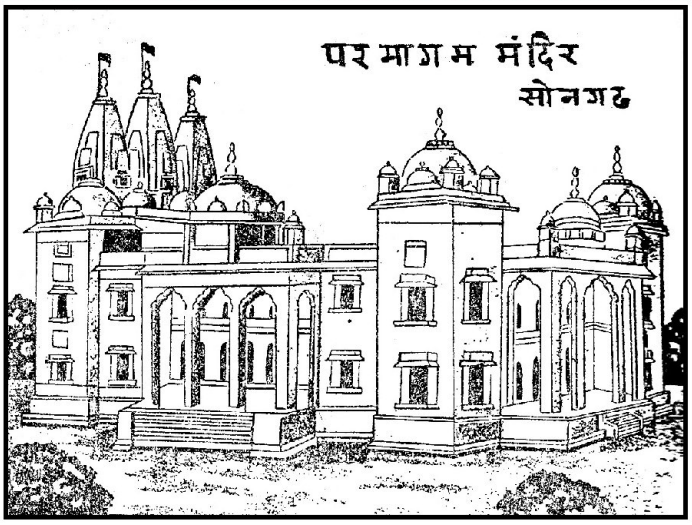

सोनगढ़ आये... परमागममंदिर देखा.... और—

एक सज्जन गृहस्थ पालीताना से तीर्थयात्रा करके लौट रहे थे... बीच में सोनगढ़ आया... दूर से उन्नत तीन शिखरोंवाला भव्य परमागममंदिर देखकर दर्शनों की इच्छा हुई... भीतर जाकर परमागममंदिर देखा... शांतरस झरते वीरनाथ भगवान के दर्शन किये... संगमरमर में इटालियन मशीन से उत्कीर्ण लाल-हरे-सोनेरी अक्षरोंवाले जिनागम भी देखे... शास्त्ररचना करते हुए आचार्य भगवंतों के उत्कीर्ण चित्र भी देखे... अहा, कैसी भव्यता! कैसे अद्‌भुत भगवान! और कितनी सुंदर जिनवाणी! कलापूर्ण सुशोभित परमागममंदिर देखकर वह सज्जन इतने प्रसन्न व प्रभावित हुए कि परमागममंदिर बनानेवाले कारीगरां के प्रति भी उनको प्रेम आया, और मंदिर में से बाहर आते समय जितने कारीगर मिले उन सबको पाँच-पाँच रुपये देते गये।

अहा, जिन जिनागम की बाह्य शोभा देखकर भी सज्जनों को ऐसा हर्ष प्रगट हो तब उस जिनागम का अंतरंग-हार्द समझनेवाले ज्ञानियों को जो महा आनंद होता होगा उसका क्या कहना!

अहो जिनागम! आप तो आनंद के दातार हो!

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)